R.N.I. No. : DELBIL / 2001/4685 Postal regn. No. : A.L.G. / 29 / 2018-20

मूल्य-4 रुपये, वर्ष-21, अङ्क-5 मई 2021 1

श्री आदिनाथ-कुन्दकुन्द-कहान दिगम्बर जैन ट्रस्ट, अलीगढ़ (उ०प्र०) का
मासिक मुख समाचार पत्र

मङ्गलायतन

मई का E - अंक

कहान समयसार सम्प्राप्ति शताब्दी वर्ष

वैराग्य वर्षा

यह शरीर तो संयोगी अनित्य है – ऐसे शरीर तो अनन्त आये और गये, किन्तु मेरा आत्मा अनादि-अनन्त एकरूप है, उसका कभी नाश नहीं होता। इस प्रकार जिसे दिन-रात आत्मा की चिन्ता जागृत हुई है, आत्मा क्या है ? – उसका भान करने के लिये, उसका ध्यान करने के लिये, उसकी भावना करने के लिये, जिसे सदा अन्तर में रटन चालू है, उसका जीवन प्रशंसनीय है। जगत् की, जञ्जाल की चिन्ता के समक्ष जिसे आत्मा के विचार का भी अवकाश नहीं है, उसका जीवन तो व्यर्थ चला जाता है। जगत् की, जञ्जाल की चिन्ता का झंझट छूटकर जिसे आत्मा की चिन्ता जागृत हुई है, उसका जीवन धन्य है।

जिस प्रकार माता से पृथक् पड़े हुए बालक को 'मेरी माँ... मेरी माँ...' इस प्रकार अपनी माता की ही रटन रहा करती है। कोई उससे पूछे कि तेरा नाम क्या है ? तो वह कहेगा 'मेरी माँ।' कोई उससे खाने के लिये पूछे तो कहेगा 'मेरी माँ', इस प्रकार वह माता की ही रटन करता है; इसी प्रकार जिन भव्य जीवों को अन्तर में आत्मा की दरकार जगती है, आत्मा की ही रटन और आत्मा की ही चिन्ता जो प्रगट करते हैं, जो आत्मा के अतिरिक्त अन्य की रुचि अन्तरङ्ग में नहीं होने देते, उनका जीवन धन्य है।

अहो ! जो इस चैतन्यस्वभाव का भान प्रगट करके, ध्यान में उसे ध्याता है, उसकी महिमा की क्या बात करना ! उसने तो कार्य प्रगट कर लिया है; इसलिए वह तो कृतकृत्य है ही, परन्तु जिसने उसके कारणरूप रुचि प्रगट की है अर्थात् जिसे यह चिन्ता प्रगट हुई है कि अहो ! मेरा कार्य कैसे प्रगट हो ? मुझे अन्दर से आनन्दकन्द आत्मा का अनुभव कैसे प्रगट हो ? उस आत्मा का जीवन भी धन्य है, संसार में उसका जीवन प्रशंसनीय है – ऐसा सन्त-आचार्य कहते हैं।

मङ्गलायतन

श्री आदिनाथ-कुन्दकुन्द-कहान दिगम्बर जैन ट्रस्ट, अलीगढ़ (उ.प्र.) का

मासिक मुखपत्र

वर्ष-21, अङ्क-5 (वी.नि.सं. 2547; वि.सं. 2077) मई 2021

समयसार-समयसार महाग्रन्थ समयसार

ज्ञायक उसके रहे लक्ष्य में जो पढ़ ले इकबार,
समयसार-समयसार महाग्रन्थ समयसार॥ टेक॥

काम भोग बन्धन की कथा तो सबको सहज सुलभ है,
पर से भिन्न एकत्वभाव की उपलब्धि दुर्लभ है।
दुर्लभ सहज सुलभ हो जावे, ऐसा चमत्कार॥
समयसार-समयसार ॥1 ॥

जैसे लोह समान स्वर्ण की बेड़ी भी है बाँधती,
वैसे ही शुभ अशुभ कर्म की दोनों बेड़ी बाँधती।
पुण्य भला है पाप बुरा है अज्ञानी ये मानता,
लेकिन इनमें कोई ना अन्तर सम्यक्ज्ञानी जानता
नवतत्त्वों में छुपा हुआ है ऐसा जाननहार
समयसार-समयसार ॥2 ॥

साभार : मंगल भक्ति सुमन

संस्थापक सम्पादक
स्व. पण्डित कैलाशचन्द्र जैन, अलीगढ़

मुख्य सलाहकार
श्री बिजेन्द्रकुमार जैन, अलीगढ़

सम्पादक
डॉ. सचिन्द्र शास्त्री, मङ्गलायतन

सह सम्पादक
पण्डित सुधीर जैन शास्त्री, मङ्गलायतन

सम्पादक मण्डल
ब्रह्मचारी पण्डित ब्रजलाल शाह, वढ़वाण
बाल ब्रह्मचारी हेमन्तभाई गाँधी, सोनगढ़
डॉ. राकेश जैन शास्त्री, नागपुर
श्रीमती बीना जैन, देहरादून

सम्पादकीय सलाहकार
पण्डित रतनचन्द भारिल्ल, जयपुर
पण्डित विमलदादा झाँझरी, उज्जैन
श्री चिरंजीलाल जैन, भावनगर
श्री प्रवीणचन्द्र पी. वोरा, देवलाली
श्री वसन्तभाई एम. दोशी, मुम्बई
श्री श्रेयस् पी. राजा, नैरोबी
श्री विजेन वी. शाह, लन्दन

मार्गदर्शन
डॉ. किरीटभाई गोसलिया, अमेरिका
पण्डित अशोक लुहाड़िया, अलीगढ़

इस अङ्क के प्रकाशन में सहयोग-
श्रीमती प्रज्ञा जैन,
कल्याणी जैन,
हस्ते श्री अजित जैन,
बड़ोदरा (गुजरात)।

क्या - कहाँ

'मैं स्वयं चैतन्यराजा हूँ'..... 5
श्री समयसार नाटक..... 16
आत्मा कौन है..... 14
आचार्यदेव परिचय..... 28
प्रेरक प्रसंग..... 30
जिस प्रकार..... 31
समाचार-दर्शन..... 32

शुल्क :
वार्षिक : 50.00 रुपये
एक प्रति : 04.00 रुपये

श्री समयसार गाथा 17-18 पर पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी का प्रवचन

'मैं स्वयं चैतन्यराजा हूँ'

आत्मा शरीर से भिन्न एक महान चैतन्यतत्त्व है। भाई, तुझे अपना कल्याण करना हो तो तेरा आत्मस्वभाव कैसा है, कितना है, वह जानना पड़ेगा। आत्मस्वरूप का माप अज्ञान से या राग से नहीं हो सकता। अंतर में ज्ञान द्वारा आत्मा को पहिचान, तभी तेरे जन्म-मरण का अंत आयेगा। जिस प्रकार राजा को पहिचानकर उसकी सेवा करने से धन के अर्थी को धन का लाभ होता है, उसी प्रकार जगत में सर्वश्रेष्ठ ऐसे इस चैतन्यराजा को पहिचानकर उसकी सेवा अर्थात् अनुभव करने से मोक्षार्थी को मोक्ष का लाभ होता है।

अरे, 'आत्मा शुद्ध है, बुद्ध है, निर्विकल्प है'—ऐसे अध्यात्म-विद्या के संस्कार तो प्राचीन काल में बालक को पालने में झुलाते-झुलाते माताएँ लोरियों में सुनाती थीं। वर्तमान में भी बाल-युवा-वृद्ध सर्व जीव शुद्ध ज्ञानानंदस्वरूप हैं; ऐसे संस्कार डालकर आत्मप्रतीति करना चाहिये। भाई, तू अनादि से शुभाशुभराग का सेवन कर रहा है, परंतु उससे तुझे किंचित् सुख की प्राप्ति नहीं हुई; सुख का भंडार तो इस चैतन्यराजा के पास है, उसे पहिचानकर उसकी सेवा कर, उसकी श्रद्धा-ज्ञान-अनुभव कर तो तुझे सुख की प्राप्ति होगी।

आत्मा को कैसा अनुभवना ? यह बात इस समयसार में समझायी है; उसमें यह 17-18वीं गाथा पढ़ी जा रही है। यह आत्मा के अनुभव की बड़ी ऊँची बात है; जिसे सुखी होना हो, उसे यह बात समझने जैसी है; इसे समझने पर ही सुख की प्राप्ति हो सकती है; शेष सब तो मृग-जल की भाँति व्यर्थ दौड़धूप है।

जिसे अपना हित करना हो और सुखी होना हो, उसे प्रथम तो ऐसा निर्णय करना चाहिये कि मैं इस शरीर से भिन्न एक आत्मा हूँ; पूर्वजन्म में भी

मैं ही था और यह शरीर छूटने के बाद भी मैं ही रहनेवाला हूँ। अरे रे, जीव अपने को भूलकर जगत के पाप में लगा रहता है, जगत के पदार्थों की रुचि और मूल्यांकन करता है और अपना मूल्य भूलकर दुःखी होता है। परंतु मैं स्वयं चैतन्यराजा हूँ, मैं अपने अनंत गुणों के वैभव से राजित-शोभित हूँ;—इसप्रकार अपनी पहिचान करके उसकी महिमा और अनुभव करने से अतीन्द्रिय सुख का अनुभव होता है। भाई, अनंतकाल तक सुख प्राप्त हो—ऐसा सुख का पंथ, संत तुझे बतलाते हैं; उस पंथ को पहिचानकर मोक्षनगरी में जाने का यह अवसर है।

अरे, एक गाँव से दूसरे गाँव जाना हो तो भी लोग पाथेय (कलेवा) साथ ले जाते हैं; तो फिर यह भव छोड़कर परलोक में जाने के लिये आत्मा की पहिचान रूपी पाथेय साथ लेना चाहिये या नहीं ? आत्मा कहीं इसी भव जितना नहीं है; यह भव पूर्ण करके भी आत्मा तो अनंत काल तक अविनाशी रहनेवाला है; तो उस अनंतकाल तक उसे सुख प्राप्त हो—ऐसा कोई प्रयत्न तो करो ! ऐसा मनुष्य अवतार और सत्समागम का ऐसा अवसर मिलना अति दुर्लभ है। आत्मा की दरकार किये बिना ऐसा अवसर चूक जायेगा तो भव-भ्रमण के दुःख से तेरा छुटकारा कब होगा ? अरे, तू चैतन्यराजा, तू स्वयं आनंद का नाथ ! भाई, तुझे ऐसा दुःख शोभा नहीं देता। जैसे राजा अज्ञानवश अपने को भूलकर घूरे पर लोटे, उसीप्रकार तू अपने चैतन्यस्वरूप को भूलकर राग के घूरे पर लोट रहा है, परंतु वह तेरा पद नहीं है; तेरा पद तो चैतन्य से सुशोभित है, चैतन्य हीरा उसमें जड़ा हुआ है, उसमें राग नहीं है। ऐसे स्वरूप को जानने से तुझे महा आनंद होगा।

अहा, आत्मा को राजा की उपमा देकर उसकी पहिचान करायी है। राजा उसे कहा जाता है जो स्वाधीन हो, जिसे किसी दूसरे की सेवा न करना पड़े... पराधीनता न हो। वह ऐसा पुण्य लेकर आया हो कि प्राकृतिकरूप से ही उसके राज्य में हीरा-मोती आदि बहुमूल्य पदार्थ पैदा होते हों, ढ़ेरों अनाज पैदा होता हो; ऐसे राजा की सेवा करने से वह प्रसन्न होकर सेवा

करनेवाले को इच्छित धन देता है। राजा का पुण्य विशिष्ट होता है; अपने राज-लक्षणों द्वारा वह दूसरों की अपेक्षा अलग दिखायी देता है। उसीप्रकार यह आत्मा तो चैतन्यऋद्धि का स्वामी परमार्थ राजा है, वह स्वाधीन है, स्वयं सुखस्वभावी है, उसे सुख के लिये किसी अन्य की सेवा नहीं करना पड़ती; सुख के लिये बाह्य विषयों का या राग का सेवन करना पड़े—ऐसा पराधीन वह नहीं है। चैतन्य राजा को उसके लक्षणों से पहिचानकर उसकी सेवा करने से वह प्रसन्न होकर मोक्षसुख प्रदान करता है। चैतन्य के अनुभवरूप विशेष लक्षण द्वारा इस चैतन्यराजा की पहिचान होती है। भाई, तू अंतर में देख! अंतर में जो 'यह चैतन्य... चैतन्य...' ऐसा अनुभव हो रहा है, वही तू है। मोक्षार्थी बनकर अंतर में ऐसे आत्मा की खोज कर।

अरे, इस भव-दु:ख की अब मुझे थकान लगी है, जगत का बड़प्पन मुझे नहीं चाहिये, मैं तो आत्मा की मुक्ति चाहता हूँ, ऐसा विचार करके, आत्मा का अर्थी होकर जो उसकी खोज करे, उसे आत्मा का पता लग सकता है—

'अेम विचारी अंतरे, शोधे सद्गुरु योग;
काम एक आत्मार्थनुं बीजो नहिं मन रोग।'

(श्रीमद् राजचन्द्र)

यह तो जिसे आत्मा की आवश्यकता हो, उसकी बात है। यह चार गति के अवतार मुझे अब नहीं चाहिये; संसार के वैभव में कहीं मेरा सुख नहीं है, मुझे अपने आत्मा का अनुभव चाहिये, उस अनुभव में ही मेरा सुख है।—इसप्रकार मोक्षार्थी होकर हे जीव! तू अपने आत्मा को खोज। चैतन्य के वेदनरूप तू अपने आत्मा को खोज। चैतन्य के वेदनरूप स्वलक्षण द्वारा उसे पहिचान।

अरे, चैतन्य का कल्याण करने के लिये जो जागृत हुआ, उसे जगत की प्रतिकूलता कैसी? अनंत प्रतिकूलता का समूह भले हो, परंतु भीतर मेरा चैतन्यतत्त्व आनंद का धाम है—इसप्रकार जो अंतर में उतरता है, वह मोक्ष

के परम सुख का अनुभव करता है। 'अहा, ऐसा अनुभव हमने किया है.... हे माता! ऐसे अनुभव की साक्षी पूर्वक कहते हैं कि अब संसार में पुन: अवतार धारण नहीं करेंगे; अंतर में देखे हुए आत्मा के पूर्ण आनंद को साधकर अब मोक्ष में जायेंगे।—इसलिये हे माता! तू प्रसन्न होकर आनंदपूर्वक आज्ञा दे।'—इसप्रकार छोटे-छोटे बालक भी माता की आज्ञा लेकर मोक्ष को साधने के लिये वन में चले जाते हैं और आत्मा के आनंद में झूलते-झूलते मोक्ष को साधते हैं।

— ऐसे मोक्ष को साधने की जिसे जिज्ञासा हो, उसे उसकी रीति आचार्यदेव ने इस समयसार में बतलायी है। अंतर में चैतन्यस्वरूप से स्वयं अपने पहिचानकर श्रद्धा करते ही राग के वेदन से भिन्न होकर आत्मा अपने को आनंदस्वरूप अनुभव करता है। ऐसे अनुभव द्वारा ही जन्म-मरण के फेरे टलते हैं और आत्मा मोक्ष को साधता है।

आत्मा की पर्याय में अनेक भाव मिश्र हैं; चेतनभाव और रागादिभाव—ऐसे अनेक भाव अनुभव में आते हैं; उनमें ऐसा विवेक करना कि इनमें जो चेतनभावरूप से अनुभव में आता है, वह मैं हूँ और जो रागादि पुण्य-पापरूप से अनुभव में आता है, वह मेरा स्वरूप नहीं है।—इसप्रकार चेतन की अनुभूतिस्वरूप अपने को जानकर श्रद्धा करना कि 'यह अनुभूति ही मैं हूँ'—सो सम्यग्ज्ञान और सम्यग्दर्शन है। ऐसे ज्ञान-श्रद्धानपूर्वक आत्मा में नि:शंक स्थिति होती है। इसप्रकार साधक आत्मा की सिद्धि होती है, अन्य किसी प्रकार नहीं होती।

भाई, इस समय एकाग्र होकर अपने आत्मा की बात को सुन! आत्मा की बात सुनते समय अपना चित्त बाह्य में इधर-उधर घुमायेगा तो आत्मा का स्वरूप तू कब समझेगा? अहा, ऐसा अचिंत्य आत्मा वाणी से अगोचर, उसका स्वरूप अनुभव में लेने के लिये तो उपयोग कितना एकाग्र करना चाहिये? जिसकी प्रतीति होने पर अतीन्द्रिय आनंद का स्वाद आये, उसकी महिमा की क्या बात! अरे, एकबार ऐसे आत्मा को लक्ष में तो ले! जिसकी

जाति पाप और पुण्य दोनों से भिन्न, जगत के किसी पदार्थ के साथ जिसकी तुलना न हो सके, ऐसा भगवान आत्मा तू स्वयं, उसे ज्ञान में लेते ही अतीन्द्रिय आनंद का स्वाद आता है। जिसप्रकार गन्ने में मीठा रस भरा है, गन्ना स्वयं ही मीठा है; उसीप्रकार चैतन्यस्वरूप आत्मा स्वयं आनंद रसमय है, उसमें सर्वत्र आनंद ही भरा है... जिसे जानते ही आनंद के अपूर्व झरने झरें और भव के दु:ख दूर हो जायें।... राग से पार वीतरागी सुख का भंडार आत्मा स्वयं है।

भाई! क्या तुझे परभावों का दु:ख नहीं लगा? क्या तुझे संसार-भ्रमण की थकान नहीं लगी? यदि लगी हो तो परभावों से भिन्न तेरा चैतन्यतत्त्व आनंद का धाम है। उसमें आकर विश्राम कर! चैतन्यतत्त्व को जानते ही तेरी अनंतकालीन थकान उतर जायेगी और चैतन्य के अपूर्व सुख का तुझे अनुभव होगा। अरे, एकबार झाँककर अपने स्वरूप को देख तो सही! तू बाह्य विषयों का अनुसरण कर रहा है, उनमें तो दु:ख है, उनके बदले अपने आनंदस्वरूप का अनुसरण कर, उसका अनुभव कर, तो तुझे महा आनंद होगा। गुजराती भजन में कहा है कि—

'अनुभवीने अेटलुं रे... आनंदमां रहेवुं रे...
भजवा परब्रह्मने, बीजुं कांई न कहेवुं रे...'

भाई, करने जैसा तो यही है। परब्रह्म यह आत्मा स्वयं है, उसे पहिचानकर उसका भजन करना। तू चैतन्यानंद का पर्वत है, परंतु राग में एकता की ओट में तुझे राग से भिन्न अपना महान तत्त्व दिखायी नहीं देता। तुझे पुण्य-पाप दिखायी देते हैं, बाहरी वस्तुएँ दिखायी देती हैं और अपना चिदानंद आत्मा ही तुझे दिखायी नहीं देता! सबको देखनेवाला अपना आत्मा ही तुझे दिखायी नहीं देता? ....अरे, आश्चर्य की बात है कि स्वयं ही अपने को दिखायी नहीं देता! भाई, अज्ञान से तू बहुत दु:खी हुआ, फिर भी तुझे अपनी दया नहीं आती? तुझे अपनी सच्ची दया आती हो, और अपने आत्मा को दु:ख से छुड़ाना हो तो प्रथम अपने आत्मा के अनुभव का कार्य

कर। अन्य सबका प्रेम छोड़कर, चैतन्यस्वरूप आत्मा स्वयं कैसा है, उसे पहिचानकर अपने आत्मा को इस भव के भयंकर दु:खों से बचा! भाई, भवदु:ख से आत्मा को छुड़ाने का यह अवसर है। आत्मा का सच्चा स्वरूप लक्ष में लेने से तेरे निजगृह का चैतन्यभंडार खुल जायेगा। अहो, ऐसी मेरी वस्तु! ऐसा आनंदधाम मैं स्वयं! मेरा आत्मा अद्भुत है!—वही मेरा विश्राम-स्थल है।—ऐसी प्रतीति होने पर उसी में तू नि:शंकरूप से स्थित रहेगा। इसप्रकार तुझे अपने साध्यरूप शुद्ध आत्मा की सिद्धि होगी;—यह मुक्ति का उपाय है। जिन भगवंतों की यहाँ स्थापना होती है, उन भगवंतों ने ऐसे उपाय से आत्मा का सेवन करके मुक्ति प्राप्त की है और जगत के जीवों को भी इसी मार्ग का उपदेश दिया है। हे आत्मा के अर्थी जीवो! तुम ऐसे मार्ग को पहिचानकर उसका सेवन करो... अर्थात् रागादि से पार चैतन्यतत्त्व जैसा है, वैसा जानकर श्रद्धा में लेकर उसका अनुभव करो... जिससे जन्म-मरण से छूटकर तुम आत्मा के परम आनंद को प्राप्त होगे।

आत्मा दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप है, वह 'राजा' है, अर्थात् स्वरूप की श्रेष्ठ लक्ष्मी से वह शोभायमान है; ऐसे चैतन्यराजा को पहिचानकर—उसकी श्रद्धा करके मोक्षार्थी जीव को उसकी सेवा करनी चाहिये।

जो जीव मोक्षार्थी है, उसकी यह बात है। मोक्षार्थी अर्थात् एक आत्मा का ही अर्थी, अन्य किसी का अर्थी नहीं। जो संसार का अर्थी है, वह मोक्ष का अर्थी नहीं है। जो राग का-पुण्य का-वैभव का अर्थी है, वह आत्मा का अर्थी नहीं है; जगत को अच्छा लगाने या जगत से बड़प्पन लेने का जो अर्थी है, वह आत्मा का अर्थी नहीं है। जो आत्मार्थी हुआ है, जिसे एक आत्मार्थ साधने का ही काम है, दूसरी कोई भावना नहीं है—ऐसा जीव अपने चिदानंदस्वरूप आत्मा को जानकर उसी का सेवन करता है। आत्मा का ही अर्थी होकर आत्मा का सेवन करने से अवश्य आत्मा के आनंद की प्राप्ति होती है।

जिन्हें अब संसार का विष उतार देना है और मोक्षसुख के अमृत का

स्वाद चखना है, वे जीव स्वानुभूति द्वारा अपने शुद्ध आत्मा का सेवन करते हैं।

देखो, पहले से ही स्व-आत्मा का सेवन करने की बात कही है, पर की सेवा करने की बात नहीं की। पहले देव-गुरु-शास्त्र की सेवा से आत्मप्राप्ति होगी—ऐसा नहीं कहा। पहले से ही आत्मा को जानने की अर्थात् अनुभव करने की बात कही है। ऐसे आत्मा को जानना, उसका अनुभव करना ही देव-गुरु-शास्त्र की सेवा है, क्योंकि देव-गुरु-शास्त्र ने आत्मा का अनुभव करना ही कहा है।

आत्मा को जानना—श्रद्धना-अनुभवना, तीनों एक साथ होते हैं, वह आत्मा का सेवन है। भाई, ऐसा मनुष्य भव पाकर अपने आत्मा का परम आनंद प्रगट करने के लिये तू अपनी पर्याय द्वारा अपने अखंड आत्मा का सेवन कर। उसकी सेवा करने से अनंत गुणों का निधान ले—ऐसा यह चैतन्यराजा है।

परवस्तु तो भिन्न है, इसलिये उसकी सेवा की बात नहीं ली, राग की सेवा तो अनादिकाल से कर-करके दु:खी हो रहा है; क्षणिक पर्याय का या गुण-भेद का सेवन करना नहीं कहा, क्योंकि उस भेद में संपूर्ण आत्मा अनुभव में नहीं आता; इसलिये भेद के विकल्पों से पार जो ज्ञानानंद एक स्वरूप, उसे ज्ञान में—श्रद्धा में लेकर अनुभवना ही चैतन्यराजा की सच्ची सेवा है, वही मोक्ष के लिये सच्ची आराधना है। अहा, आत्मा स्वयं संपूर्ण चैतन्यस्वरूप तो है ही; परंतु 'मैं ऐसा हूँ'—ऐसी अनुभूति उसने कभी नहीं की, इसलिये उसने ज्ञानस्वरूप आत्मा की सेवा कभी की ही नहीं। सत्समागम से बोधि प्राप्त करके, मोह-ग्रंथि तोड़कर जब सम्यग्ज्ञान ज्योति प्रगट करे, तभी ज्ञानस्वरूप आत्मा की सच्ची सेवा होती है। ऐसे आत्मा की सेवा (ज्ञान, श्रद्धा, अनुभूति) के अतिरिक्त अन्य किसी उपाय से मोक्ष की सिद्धि नहीं होती; इसलिये मोक्षार्थी जीवों को ऐसे आत्मा को पहिचानकर उसी का सेवन करना चाहिये।

यहाँ आत्मा को 'जानना' कहा, वह साधारण परलक्षी ज्ञातृत्व की बात

कही है, परंतु अंतर के स्वानुभूति सहित ज्ञातृत्व की बात है। सचमुच तो जाना ही उसे कहा जाता है कि उसकी श्रद्धा करके अनुभव भी करे। अनुभूतिरहित ज्ञातृत्व वह सच्चा ज्ञातृत्व नहीं है।

भाई, यदि तुझे इस धधकते—जलते हुए संसार से बाहर निकलकर चैतन्य की अपूर्व शांति चाहिये तो तू आत्मार्थी बनकर आत्मा को अनुभव में ले। आत्मा के अतिरिक्त अन्य कोई इस कषाय की धधकती अग्नि से बचने का स्थान नहीं है। अज्ञान से जीव कषायाग्नि में जल रहा है। एकबार एक हलवाई की उबलती हुई कढाई में ऊपर से एक साँप गिरा और आधा जल गया... उस जलन की वेदना से छूटने के लिये एकदम उछला तो नीचे धधकती हुई भट्टी में जा पड़ा और मर गया! उसीप्रकार यह संसारी जीव अज्ञानवश मोहभ्रांति से दु:खी हो रहे हैं। तेल की कड़ाही में गिरे हुए सर्प की भाँति दु:ख में जल रहे हैं... उसे छूटना तो चाहते हैं, परंतु किसप्रकार दु:ख से छूटा जा सकेगा ?—इसकी तो खबर नहीं है और अज्ञान से राग में-पुण्य में सुख मानकर फिर संसार के दावानल में ही सुलगते रहते हैं। उन्हें छुड़ाने के लिये संत करुणा करके शांति का मार्ग बतलाते हैं।

भाई! इस संसार के घोर दु:खों से छूटने के लिये तू ज्ञान-आनंद के धाम ऐसे अपने आत्मा को पहिचानकर उसकी सेवा कर। उसे पहिचानते ही उसकी ओर दृष्टि करते ही ऐसे आनंद की स्फुरणा होगी कि विकल्पों का और दु:खों का इन्द्रजाल तुरंत लुप्त हो जायेगा। तुझे अपने आनंद का स्वराज्य चाहिये तो अपने चैतन्यराजा को ही अपना मत देना, अन्य किसी को मत नहीं देना। मत अर्थात् मति-बुद्धि; अपनी बुद्धि को अपने चैतन्यतत्त्व की परम महिमा में लगाना। अहा! मेरा चैतन्यतत्त्व ही सबसे उत्कृष्ट है, उससे बड़ा दूसरा कोई नहीं है कि जिसे मैं अपना मत दूँ। इसप्रकार धर्मी अपनी मति के मत को अपने स्वभाव में ही युक्त करता है, उसी का आदर-प्रेम-बहुमान करके अनुभव में लेता है।

अहा, मेरे चैतन्य के आनंद की स्फुरणा होते ही विकल्पों का जाल

तत्क्षण लुप्त हो जाता है। चेतना जहाँ विकल्पों से अत्यंत भिन्न हो गई है—ऐसी चेतनास्वरूप आत्मा मैं हूँ—ऐसा धर्मी अपना अनुभव करता है।

सुखी होना हो, उसे क्या करना चाहिये ? तो कहते हैं कि सर्व प्रथम वह आत्मा को जाने। '**मोक्षार्थिना प्रथमेव आत्मा ज्ञातव्यः....**' मोक्षार्थी को प्रथम ही आत्मा को जानना। जाना तभी कहा जाता है कि जिसे जानना है, उसके सन्मुख होकर उसका अनुभव करे। अतीन्द्रिय ज्ञान द्वारा ऐसा आत्मा ज्ञात होता है और उसे जानते ही अतीन्द्रिय आनंदसहित अनंतगुणों का शुद्धता का अनुभव होता है। अहा, ऐसे अनंत सामर्थ्य की खान तू स्वयं है ! तू अपना ही सेवन कर। आत्मोन्मुख होकर ज्ञान-श्रद्धान-अनुचरणरूप सेवा करते-करते आत्मा स्वयं मोक्षरूप परिणमित होता है। इसीप्रकार साध्य की सिद्धि है; अन्य किसीप्रकार साध्य की सिद्धि नहीं है।

आत्मा के ज्ञानपूर्वक उसका श्रद्धान और आचरण होता है। जाने बिना श्रद्धा किसकी ? और स्थिर कहाँ होना ? आत्मा को जानने पर ज्ञाता-ज्ञेय का विकल्प भी नहीं रहता, ज्ञान तो विकल्प से भी पार है। ज्ञान और श्रद्धा तथा उस काल निर्विकल्प अनुभूति—यह सब एक साथ ही है। प्रथम आत्मा को जानना और फिर उसकी श्रद्धा करना—ऐसा कहकर ज्ञान-श्रद्धा का कालभेद नहीं बतलाना है परंतु ज्ञानपूर्वक श्रद्धा बतलाना है। चैतन्य की जैसी अनंत-अचिंत्य महिमा है, वैसी ज्ञान में बराबर लेकर उसकी श्रद्धा होती है; इसलिये कहा है कि प्रथम जानकर उसकी श्रद्धा करना। ऐसे ज्ञान-श्रद्धानपूर्वक ही आत्मा निःशंकरूप से अपने स्वरूप में स्थित होता है और शुद्ध आत्मा की सिद्धि होती है।

आत्मा का पूर्णस्वरूप जहाँ ज्ञान में आया, वहीं उसकी श्रद्धा हो जाती है कि—'यह मैं !'—इसप्रकार स्वसंवेदनपूर्वक ज्ञान और श्रद्धा एक साथ ही प्रगट होते हैं। इसका नाम आत्मा की सेवा है।—ऐसी सेवा द्वारा चैतन्यराजा प्रसन्न होता है अर्थात् मोक्ष साधता है।

जो आत्मा का अर्थी हुआ है, उस जीव को सीधा ही आत्मा का अनुभव

करना कहा है। पहले निर्णय करना और फिर अनुभव करना—ऐसे दो भेद नहीं लिये। सत्य आत्मा का ज्ञान, निर्णय और अनुभव एक साथ ही है। चैतन्यानुभूति ही आत्मा है। चैतन्यरूप से जो सदा सबको अनुभव में आता है, उस चैतन्यस्वरूप ही आत्मा है। 'यह चैतन्य... चैतन्य...' इसप्रकार चैतन्यभावरूप से जो अनुभव में आता है, वही मैं हूँ;—इसप्रकार चैतन्यस्वरूप आत्मा को जानकर उसकी श्रद्धा करना और नि:शंकता से चैतन्यरूप ही अपने को अनुभवना, वह आत्मराजा के सेवन की रीति है। ऐसी सेवा द्वारा मोक्ष की सिद्धि होती है।

चैतन्यभाव रागादि से पृथक् अनुभव में आया कि 'ऐसा चैतन्यभाव मैं'—वह निर्विकल्प स्वसंवेदन ज्ञान से अनुभव हुआ है; यह मोक्ष को साधने की अपूर्व कला है। यह तो उस मोक्षार्थी जीव की बात है जो अनुभव में लिये तैयार हुआ है। महा मोक्षसुख—जो अनंत काल तक बना रहे, उसका उपाय भी अलौकिक ही होता है; वह ऐसा नहीं होता कि साधारण शुभराग के भाव से प्राप्त हो जाये। आत्मा का जैसा महान स्वरूप है, वैसा ही ज्ञान में आये, तभी वह सधता है। जितना महान है, उतना महान न मानकर किंचित् भी न्यून माने, उसे रागवाला-पर के साथ संबंधवाला माने तो सच्चा आत्मा उसके ज्ञान में नहीं आ सकता, ज्ञान के बिना उसकी सच्ची श्रद्धा भी नहीं हो सकती और वस्तु का ज्ञान-श्रद्धान किये बिना उसमें स्थित रहनेरूप आचरण भी नहीं हो सकता।—इसप्रकार आत्मा को जाने बिना साध्य की सिद्धि नहीं होती।

चैतन्यस्वरूप वह आत्मा का अबाध्य स्वरूप है; उसे आत्मा में से कम नहीं किया जा सकता। दूसरा सब कुछ आत्मा में से निकाला जा सकता है; शरीर-मन-वाणी-देव-गुरु-शास्त्र-राग के विकल्प आदि सबको निकाल देने पर भी उनके बिना आत्मा स्थित रह सकता है, परंतु चैतन्यभाव के बिना आत्मा नहीं रह सकता;—इसप्रकार सबको निकाल देने पर अंत में जो चैतन्यभावरूप से अनुभव में आता है, वही मैं हूँ;—ऐसा अनुभव करना,

वह आत्मप्राप्ति की रीति है। आत्मा ऐसी वस्तु है कि यह चैतन्यरूप से ही अनुभव में आता है, अन्य किसी भाव से अनुभवना चाहे तो आत्मा अनुभव में नहीं आ सकता।

भाई, यह तो मोक्ष के द्वार में प्रवेश करने की बात है; चैतन्य महाराज से मिलने की बात है।—मैं कोई चाकर या भिखारी नहीं हूँ, परंतु मैं स्वयं चैतन्यराजा हूँ;—इसप्रकार राजा होकर स्वयं अपना सेवन करने की बात है। अरे, आत्मा का अनुभव करने के लिये राग की मदद माँगना कहीं चैतन्य को शोभा देता है ? मुझे किसी की मदद चाहिये, मुझे राग की आवश्यकता है, इसप्रकार जो दीनता करता है, वह तो कायर है; ऐसे कायर जीव आत्मराजा से भेंट नहीं कर सकते, उसका अनुभव नहीं कर सकते। यह तो शूरवीरों का काम है; वीतराग का मार्ग ही शूरवीरों का है। मुझे अपने आत्मअनुभव में पर का आश्रय है ही नहीं; विकल्प का आश्रय मुझे नहीं है; स्वाधीनरूप से अपनी चेतना द्वारा ही मैं अपने आत्मा का अनुभव करता हूँ—ऐसे अनुभव द्वारा मोक्ष के द्वार में प्रवेश होता है।

अनुभूति होने पर प्रतीति हुई कि 'यह चैतन्यस्वरूप आत्मा मैं हूँ', पर्याय में ज्ञान, राग आदि अनेक भाव मिश्र हैं, परंतु उसमें विवेकबुद्धि द्वारा अर्थात् भेदज्ञान की अत्यंत सूक्ष्मता द्वारा अन्य सर्वभावों को भिन्न करके जो यह मात्र चैतन्यस्वरूप परम शांत तत्त्व अनुभव में आता है, वही मैं हूँ—ऐसा आत्मज्ञान होता है; ऐसे आत्मज्ञान में जो आत्मा ज्ञात हुआ, वही मैं हूँ—ऐसी निःशंक श्रद्धा होती है; ऐसे ज्ञान और श्रद्धापूर्वक आत्मा में स्थिर होने पर आत्मा की सिद्धि होती है।

अपने आत्मा का ऐसा अनुभव करना, वह कोई असंभव नहीं है, वह संभव है, हो सकता है और वही हमें करना है।—ऐसी स्वीकृतिपूर्वक चैतन्यस्वरूप आत्मा का अनुभव हो सकता है। धर्मी को ऐसा अनुभव हुआ है; पहले भी आत्मा तो ऐसी अनुभूतिस्वरूप ही था, कहीं परभावरूप नहीं

शेष पृष्ठ 27 पर

श्री समयसार नाटक पर पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के
धारावाही प्रवचन

जीव की दशा पर अग्नि का दृष्टान्त

इस प्रकार समयसार के छठवें कलश के पद्यानुवाद रूप सातवाँ काव्य पूर्ण हुआ।

जीव की दशा पर अग्नि का दृष्टान्त

जैसैं तृण काठ बांस आरने इत्यादि और,
ईंधन अनेक विधि पावकमैं दहिये ।
आकृति विलोकित कहावै आग नानारूप,
दीसै एक दाहक सुभाव जब गहिये ॥
तैसैं नवतत्त्वमै भयौ है बहु भेषी जीव,
सुद्धरूप मिश्रित असुद्ध रूप कहिये ।
जाही छिन चेतना सकतिकौ विचार कीजै,
ताही छिन अलख अभेदरूप लहिये ॥8 ॥

अर्थः– जैसे कि घास, काठ, बांस वा जंगल के अनेक ईंधन आदि अग्नि में जलते हैं, उनकी आकृति पर ध्यान देने से अग्नि अनेकरूप दिखती है, परन्तु यदि मात्र दाहक स्वभाव पर दृष्टि डाली जावे तो सब अग्नि एकरूप ही है; उसी प्रकार जीव (व्यवहारनय से) नव तत्त्वों में शुद्ध, अशुद्ध मिश्र आदि अनेक रूप हो रहा है; परन्तु जब उसकी चैतन्यशक्ति पर विचार किया जाता है तब वह (शुद्धनय से) अरूपी और अभेदरूप ग्रहण होता है ॥8 ॥

काव्य – 8 पर प्रवचन

अब सातवें कलश के अनुवादरूप आठवाँ काव्य कहते हैं, जिसमें जीव की दशा पर अग्नि का दृष्टान्त देते हैं।

परमात्मा त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव क्या कहते हैं, उसकी जिसे खबर नहीं– समझ में ही फेर है, वाद–विवाद में पड़ा है; उसको सम्यग्दर्शन नहीं होता। अपनी कल्पनानुसार वस्तु का स्वरूप माने और धनवान हो तो दान

देकर, मन्दिर आदि बनवावे और मान ले कि हमें धर्म हो गया तो ऐसे मान लेने से धर्म नहीं हो जाता। मन्दिर बनता है, वह तो पुद्गल से बनता है और बनाने का भाव शुभभाव है, उससे पुण्य बँधता है; परन्तु धर्म नहीं होता। धर्म तो अन्दर में आनन्द मन्दिर खोलने से होता है।

जैसे तृण काठ--आदि अनेक ईंधन अग्नि में जलते हैं, उनकी आकृति पर ध्यान देने से अग्नि अनेक रूप दिखती है, परन्तु अग्नि के दाहक स्वभाव पर दृष्टि करो तो अग्नि एकरूप ही है। जंगल में सूखे हुये छाणे (कंडे) का आकार अलग होता है, लकड़ी का आकार अलग होता है, पत्तों का अलग होता है और गन्ने के छिलकों को जलावे तो उनका आकार अलग होता है और मनुष्य को जलावे तब अग्नि में ऊपर से मनुष्य का आकार दिखता है; परन्तु वास्तव में अग्नि का स्वभाव देखो तो दाहक--दाहक--दाहक है, एकरूप दाहक स्वभाव है।

बनारसीदासजी दृष्टान्त देकर सरल करके समझाते हैं।

'दीसै एक दाहकस्वभाव जब गहिये'- भिन्न-भिन्न ईंधन अग्नि में जल रहे हैं, उसी समय अग्नि को उसके एक दाहक स्वभाव से देखो तो सब अग्नि एकरूप है और अनेक आकार गौण हैं, एक दाहक स्वभाव मुख्य है।

'तैसे नवतत्त्व मैं भयो है बहुभेषी जीव' -अग्नि की तरह जीव व्यवहारनय से नवतत्त्वों में शुद्ध-अशुद्ध, मिश्र आदि अनेकरूप हो रहा है। रागरूप होता है, बंधरूप होता है, संवररूप होता है, निर्जरा और मोक्षरूप होता है। ये सब आत्मा के वेष हैं। मोक्ष भी वेष हैं, अवस्था है, गुण नही।

इस प्रकार आत्मा व्यवहारनय से नवतत्त्वरूप होने पर भी उसके चेतना स्वभाव से देखो तो वह त्रिकाल एक चेतना स्वभाव रूप ही है। चेतना--चेतना--चेतना त्रिकाल एकरूप विज्ञानघन है। उसमें सभी भेद गौण हो जाते हैं।

'जाहीं छिन चेतना सकति कौ विचार कीजै, ताहीं छिन अलख अभेदरूप लहिये'- जिस क्षण आत्मा की चेतना शक्ति का विचार करने में आता है, तब वह अरूपी और अभेदरूप ग्रहण होती है। जिस क्षण चैतन्य

शक्ति का सत्त्व देखो, उस क्षण अलख माने विकल्प और भेद से ज्ञात न हो, वैसा आत्मा स्वसंवेदन से जान लिया जाता है- अनुभव में आता है। जैसा अलख और अभेद है, वैसा स्वसंवेदन में आता है।

मार्ग जरा कठिन तो है; परन्तु सरल भाषा में आता है; अतः थोड़ा अभ्यास हो तो समझ में आवे- ऐसी बात है। समझ में नहीं आवे- ऐसा नहीं। अग्नि को लकड़ी की अग्नि, तिनके की अग्नि, छाने की अग्नि ऐसे दाहक के आकार से देखो तो अग्नि अनेकरूप दिखती है, परन्तु अग्नि को दाहकरूप देखो तो दाहक--दाहक--दाहकरूप अग्नि एकरूप है। वैसे ही आत्मा को जीव का विकल्प, अजीव का विकल्प, आस्रव, बंध, संवर, निर्जरा और मोक्षरूप से देखो तो आत्मा अनेकरूप दिखता है, परन्तु आत्मा को चैतन्य--चैतन्य--चैतन्यरूप से देखो तो आत्मा एकरूप चैतन्य है।

आत्मा एकरूप नित्य ध्रुव अरूपी अभेदरूप दृष्टि में आता है, उसे ही आत्मा कहने में आता है।

जीव की दशा पर स्वर्ण का दृष्टान्त

जैसैं बनवारी मैं कुघात के मिलाप हेम,
नानाभांति भयौ पै तथापि एक नाम है।
कसिकैं कसौटी लोकु निरखैं सराफ ताहि,
बानके प्रवान करि लेतु देतु दाम है॥
तैसैं ही अनादि पुद्गलसौं संजोगी जीव,
नव तत्त्वरूपमैं अरूपी महा धाम है।
दीसै उनमानसौं उदोतवान ठौर ठौर,
दूसरौ न और एक आतमा ही राम है॥9॥

अर्थः- जिस प्रकार सुवर्ण कुधातु के संयोग से अग्नि के ताव में अनेकरूप होता है, परन्तु तो भी उसका नाम एक सोना ही रहता है तथा सर्राफ कसौटी पर कसकर उसकी रेखा देखता है और उसकी चमक के अनुसार दाम देता-लेता है; उसी प्रकार अरूपी महा दीप्तवान जीव अनादिकाल से पुद्गल के समागम में नवतत्त्व रूप दिखता है, परन्तु अनुमान प्रमाण से सब

हालतों में ज्ञानस्वरूप एक आत्माराम के सिवाय और दूसरा कुछ नहीं है।

भावार्थ:- जब आत्मा अशुभ भाव में वर्तता है तब पापतत्त्वरूप होता है, जब शुभ भाव में वर्तता है तब पुण्यतत्त्वरूप होता है, और जब शम, दम, संयमभाव में वर्तता है तब संवररूप होता है, इसी प्रकार भावास्रव भावबंध आदि में वर्तता हुआ आस्रव-बंधादिरूप होता है, तथा जब शरीरादि जड़ पदार्थों में अहंबुद्धि करता है तब जड़स्वरूप होता है; परन्तु वास्तव में इन सब अवस्थाओं में वह शुद्ध सुवर्ण समान निर्विकार है ॥9 ॥

काव्य - 9 पर प्रवचन

यह श्री नाटक समयसार के जीवद्वार का नौवाँ काव्य है-

जैसे सोना कथीर, चाँदी, पीतल आदि सहित अशुद्ध हो, उसे शुद्ध करने के लिए कुलड़ी (भट्टी) में डालकर ताव दिये जाते हैं तो तेरहवाँ, चौदहवाँ, सोलहवाँ आदि सोने की अनेक अवस्थायें होती हैं; फिर भी हर समय उसका नाम सोना ही है। वस्तुरूप से सोना तो प्रत्येक अवस्था में सोना ही है- सर्राफ उस सोने को कसौटी पर कसकर उसकी रेखा देखता है और उसकी चमक अनुसार सोने का भाव निश्चित करता है। यह तो दृष्टान्त हुआ। उसका सिद्धान्त यह है कि यह अरूपी महा दीप्तिवाला जीव अनादिकाल से पुद्गल के समागम में नवतत्त्वरूप दिखता है, परन्तु वस्तुरूप से जीव तो सदा एकरूप ही है। वह अनुमान प्रमाण से समस्त दशाओं में ज्ञानस्वरूप एक आत्माराम ही है, अन्य कुछ नहीं- ऐसा निश्चित होता है।

सर्वज्ञ परमात्मा जिनेश्वरदेव ने शुद्ध चैतन्य आनन्द स्वरूप आत्मा को ही आत्मा कहा है। भगवान आत्मा अतीन्द्रिय ज्ञान आनन्द का धाम है, परन्तु अनादिकाल से कर्म और अन्य पुद्गल से संयोग में रहा हुआ है, इससे नवतत्त्वरूप दिखता है। पर्याय में नवतत्त्वरूप दिखता है, वही आत्मा द्रव्य से अरूपी महाआनन्द मूर्ति सदा एकरूप रहा है।

नवतत्त्व कौन से ?जीव सम्बन्धी विकल्प, वह जीवतत्त्व; अजीव सम्बन्धी विकल्प, वह अजीवतत्त्व; दया, दान, व्रत, भक्ति के परिणाम, वह आस्रव और उसमें अटकना, वह बंधतत्त्व है; उस आस्रव का अभाव करके

स्वभाव के आश्रय से धर्म प्रकट हो, वह संवरतत्त्व है; शुद्धि में वृद्धि हो, वह निर्जरातत्त्व है और शुद्धि की पूर्णता होती है, वह मोक्षतत्त्व है। ये सब पर्यायें हैं। पुद्गल कर्म के निमित्त से पर्याय में आस्रव, बंध, पुण्य, पाप आदि मलिन पर्याय और उसका अभाव होकर संवर, निर्जरा, मोक्ष रूप निर्मल पर्यायें दिखती हैं। पर्याय में नवतत्त्व दिखते हैं, परन्तु वस्तु में ऐसे नौ भेद नहीं है। सोनारूप से सोना, सोना ही है, वैसे ही वस्तुरूप से आत्मा अरूपी आनन्दघन है; उसमें दृष्टि करने से पर्याय में धर्म प्रकट होता है। इसके सिवाय बाहर से कहीं से भी धर्म प्रकट नहीं होता।

वस्तुरूप से आत्मा एकरूप त्रिकाली ज्ञान-आनन्दघन है। ऐसा ही उसका त्रिकाली स्वरूप है। उसमें कर्म के सम्बन्ध से नव भेदरूप अवस्था दिखती है, फिर भी उसको एकरूप देखो तो उसमें भेद है ही नहीं। अरूपी शुद्ध ज्ञान..ज्ञान..ज्ञान..आनंद.. अनादि-अनन्त ज्ञान आनन्द स्वरूप आत्मा एकरूप है; वह निश्चय है, पर्याय में नौ प्रकार दिखते हैं वह व्यवहार है।

जिसको धर्म करना है, चौरासी के अवतार-जन्म-मरण का नाश करना है, उसे क्या करना वह कहते हैं। आत्मा स्वयं अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप है। बाहर में पैसे से, परिवार से और आबरू आदि से आनन्द मानता है वह तो कल्पित आनन्द है। वस्तुतः वह आनन्द नहीं परन्तु दुःख है। ऐसी दुःख रूप अवस्था जीव की पर्याय में होती है परन्तु वह कोई जीव का स्वरूप नहीं है। वह तो जीव की विकाररूप अवस्था है। और धीरज से वस्तु का आश्रय लेने पर जो धर्मदशा प्रकट होती है उसके तीन प्रकार हैं- संवर, निर्जरा और मोक्ष। संवर माने शुद्धि की उत्पत्ति, निर्जरा माने शुद्धि की वृद्धि और मोक्ष माने शुद्धि की पूर्णता।

इस प्रकार शुद्ध और अशुद्ध अवस्था जीव की दशा में है, परन्तु वह व्यवहार है।

सेठ! यह तुम्हारा व्यापार तो व्यवहार भी नहीं- ऐसा कहते हैं। यह तो जड़ परद्रव्य के खाते में गया। व्यापार की क्रिया, वह आत्मा का व्यवहार नहीं।

आत्मा तो वह है कि जो त्रिलोकनाथ सर्वज्ञ परमात्मा ने जगत को

बताया है- प्रसिद्ध किया है। जैसे सोने को ताव देने पर कथीर घटता जाता है और सोना निर्मल होता जाता है- इस अपेक्षा से उसकी दशा में भेद पड़ते दिखाई देते हैं, परन्तु सोनारूप से तो सोना सोना ही है; वैसे ही अनन्त-अनन्त ज्ञान-दर्शनादि स्वरूप से विराजमान महाप्रभु को संसार अवस्था में निमित्त के सम्बन्ध से हिंसा, झूठ आदि पाप परिणाम; अहिंसा, सत्य आदि पुण्य परिणाम; शुभ-अशुभ दोनों रूप आस्रव भाव, बंधभाव और धर्म प्रकट होने के पश्चात् पूर्ण न हो वहाँ तक शुद्धि और शुद्धि की वृद्धिरूप संवर, निर्जरा भाव आत्मा की दशा में दिखते है; परन्तु उसी समय वस्तुरूप से देखो तो आत्मा एकरूप ही है।

देखो! एक आत्मा में दो प्रकार कहे हैं। परद्रव्य तो पर में ही है अर्थात् शरीर, शरीर में है और कर्म कर्म में है। वे जीव में नहीं; परन्तु जीव के अपने दो भाव हैं, उसमें एक पर्याय भाव है जिसमें नौ प्रकार की दशा दिखती है, वह सब व्यवहार है। मैं जीव हूँ ऐसा विकल्प, अजीव मेरे में नहीं' ऐसा विकल्प, शुभ-अशुभभाव- आस्रव और बंध ये विकारी दशायें हैं और वस्तुस्वभाव की दृष्टि करने से जो धर्म की दशा प्रकट होती है, वह निर्विकारी दशा है ये सब दशायें व्यवहार हैं; क्योंकि ये वस्तु का त्रिकाली स्वरूप नहीं है। नई प्रकट होती है, अतः अवस्था, वह व्यवहार जीव है।

भगवान आत्मा त्रिकाल शुद्ध चैतन्य धातु है। उसकी दशा में पुण्य-पाप और आस्रव-बंध आदि होते हैं, वह व्यवहार है। उसी प्रकार वस्तु जो त्रिकाली ध्रुव सत् चैतन्य, उसके आश्रय से जो शुद्धि प्रकट होती है, शान्ति और आनन्द आदि धर्म के अंश प्रकट होते हैं, वह भी व्यवहार है।

आत्मा के सम्बन्धवाली दशा को व्यवहार कहा है। बाह्य व्यवहार की बात नहीं है। उस व्यवहार का तो कुछ स्थान ही नहीं है। वह व्यवहार तो आत्मा का विषय ही नहीं है। आत्मा एक वस्तु है, अतः वह त्रिकाली है; क्योंकि 'है' उसकी उत्पत्ति या नाश नहीं होता। जो वस्तु होती है वह स्वभाव बिना की नहीं होती है। वस्तु का स्वभाव, वह 'निश्चय' है। त्रिकाली स्वभाववाला तत्त्व, वह द्रव्य अथवा वस्तु अथवा निश्चय है और उसकी

विकारीदशा, वह असद्भूत व्यवहार है और वस्तुस्वभाव के आश्रय से जो धर्म की- शान्ति और आनन्द की निर्मलदशा प्रकट होती है, वह सद्भूत व्यवहार है। एक समय की पर्याय भी भेदवाला व्यवहार है, अतः वह हेय है।

एकरूप त्रिकाली ज्ञायक भगवान आत्मा एक ही उपादेय और आदरणीय है; परन्तु अरे! इसको अपने हित के मार्ग की खबर नहीं है। सब परिभ्रमण के मार्ग में होशियार हो गये हैं।

त्रिलोकनाथ परमात्मा ऐसा फरमाते हैं कि भाई! तेरे में दो प्रकार हैं और वे पर के कारण से नहीं और पर से नहीं, परन्तु तेरे ही कारण से हुई पुण्य-पाप, आस्रव-बंध की पर्याय और तेरे आश्रय से हुई संवर, निर्जरा की पर्याय, वह व्यवहार है। अतः वह आदरणीय नहीं, हेय हैं। नव पर्यायरूप अवस्था है, नहीं है- ऐसा नहीं; परन्तु वस्तु की दृष्टि से देखो तो आत्मा एकरूप--एकरूप--एकरूप पूर्ण शुद्ध है।

अरे! इसको 'मैं कौन हूँ'- इसकी खबर नहीं। यह बात किसी दिन सुनी नहीं। कहाँ पहुँचना है, कैसे जाना, कैसे रहना- इसकी खबर नहीं--- जिन्दगी व्यर्थ चली जाती है। यह धनादि की अनुकूलता दिखती है, वह भी पूर्व का पुण्य जला, तब आई है; कोई वर्तमान पुरुषार्थ से आई नहीं है। ये पैसे अपने नजदीक आये हैं इतना ही, अपने अन्दर तो मात्र उसकी ममता आई है, पैसा तो पैसे में रहा है।

यहाँ कहते हैं कि ज्ञानी को जबतक पूर्णता न हो, वहाँ तक उसकी दशा में पुण्य-पाप, आस्रव और बंध होते हैं और स्वभाव के आश्रय से प्रकटी शुद्धि और निर्विकल्पता में आनन्द के अंश प्रकट होते हैं- ये सब दशायें होती है और पूर्णता हो तब पूर्णदशा होती है, परन्तु वह व्यवहार है। भेद पड़ते हैं अतः वह व्यवहार है। अभेद शाश्वत निजवस्तु, वह निश्चय है।

आत्मा ध्रुवरूप से अनादि-अनन्त एकरूप वस्तु है। उसकी दृष्टि करने पर - उसकी सन्मुखता और रागादि से विमुखता करने पर उसकी दशा में सम्यग्दर्शन, ज्ञान-स्थिरता, आनन्द, शान्ति आदि धर्म की शुरूआत होती है, वह आत्मा की दशा है; परन्तु आत्मा का त्रिकाली स्वरूप नहीं, अतः वह

व्यवहार है। सिद्धदशा प्रकट होती है, वह भी नई होती है, त्रिकाली नहीं; त्रिकाली का एक अंश है, अत: व्यवहार है।

जैसे सोने को अग्नि का ताव देने से सोने की अवस्था में लाल-पीले आदि अनेक रंग दिखते हैं, वैसे ही भगवान आत्मा में कर्म के निमित्त के सम्बन्ध में पुण्य-पाप आदि विकारी अवस्था और कर्म के अभाव के निमित्त में संवर, निर्जरा आदि निर्मल अवस्था दिखती है, पूर्ण शुद्ध हो, तब मुक्ति दिखती है; परन्तु ये सब नई-नई होती अवस्थायें हैं, वस्तु का त्रिकाली रूप नहीं।

अहा! इसको अपने स्वरूप की खबर नहीं है। बाहर में चतुर मनुष्य गिना जाता हो, बात करने बैठे तो सारी दुनिया की बातें कर ले, परन्तु इसको अपने वास्तविक स्वरूप की खबर नहीं है। उससे यहाँ गुरु कहते हैं कि भाई! एकबार तेरे स्वरूप की बात सुन तो सही! तेरी अस्ति दो प्रकार से है- एक वस्तुरूप से तेरी अस्ति है और दूसरी पर्यायरूप से तेरी अस्ति है।

भगवान आत्मा अविनाशी आनन्द और ज्ञान का धाम है, महावस्तु है, एकरूप है; वह निश्चयनय का विषय है। अरूपी महादीप्तिवान-चैतन्य के प्रकाश के नूर का पूर है, वह तू ही है। वह महादीप्तिवान जीव अनादिकाल से कर्मपुद्गल के समागम से नवतत्त्वरूप दिखता है, भेदरूप दिखता है; परन्तु अनुमान प्रमाण से समस्त दशाओं में वह ज्ञानस्वरूप एक आत्माराम सिवाय अन्य कुछ नहीं।

अनुमान प्रमाण से देखो तो जीव की समस्त दशाओं में ज्ञान-ज्ञान-ज्ञान की चमक त्रिकाल है, उसे देख!

पात्रता हो तो यह बात रुच जाती है। मार्ग तो यही है- ऐसा पहले समझ में- ज्ञान में तो ले! लोग दया, दान, व्रत तथा तप आदि में धर्म मानकर बैठे हैं। अरे! इसे कहाँ जाना है और किस मार्ग में अटका पड़ा है!

भाई! तू एकरूप त्रिकाली द्रव्य है, उसका एकबार अनुमान तो कर! नवतत्त्वों के भेद हैं, वे तो दशा में है, व्यवहार का विषय है- वर्तमाननय का विषय है; परन्तु त्रिकालीनय से अन्तर में देख तो अकेला चित्शक्ति का चमत्कार--चित्शक्ति का चमत्कार त्रिकाल है। क्रमश:

आत्मा कौन है और किसप्रकार प्राप्त हो ?

(श्री प्रवचनसार के परिशिष्ट में 47 नयों द्वारा आत्मद्रव्य का वर्णन किया है, उस पर पूज्य गुरुदेवश्री कानजी स्वामी के विशिष्ट अपूर्व प्रवचनों का सार)

प्रवचनसार में भगवान श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेव द्वारा रचित 275 गाथायें पूर्ण हुई हैं, अब श्री अमृतचन्द्राचार्यदेव द्वारा रचित 'परिशिष्ट' पढ़ा जाता है। जिसप्रकार मंदिर के ऊपर कलश चढ़ाते हैं, उसीप्रकार इस परिशिष्ट में 'आत्मा कैसा है और उसकी प्राप्ति कैसे होती है' उसका वर्णन करके आचार्यदेव ने प्रवचनसार पर कलश चढ़ाया है। शास्त्र सभा में यह परिशिष्ट प्रथम बार पढ़ा जा रहा है।

शिष्य की जिज्ञासा और आचार्यदेव की करुणा

'यह आत्मा कौन है, कैसा है और उसकी प्राप्ति कैसे हो ?' ऐसा प्रश्न किया जाये तो उत्तर पहले कहा जा चुका है और यहाँ फिर से कहा जाता है।

जिसे आत्मा की बहुत आतुरता लगी हो, वह शिष्य बारबार आत्मा की बात पूछता रहता है। जिसप्रकार जिसे पुत्र का प्रेम है, वह बारबार उसे संभालता है, उसीप्रकार जिसे आत्मा की प्रीति जागृत हुई है, आत्मा का कल्याण करने की आतुरता जागृत हुई है, वह जीव आत्मा का स्वरूप समझने के लिए बारंबार प्रश्न करता है। जिसे जिस वस्तु की आवश्यकता मालूम हो, उस ओर उसके श्रद्धा-ज्ञान और पुरुषार्थ ढले बिना नहीं रहते। शिष्य को आत्मा की रटन लगी है, इसलिए बारबार वह प्रश्न करता है कि प्रभो ! यह मेरा आत्मा कैसा है ? और उसकी प्राप्ति कैसे हो ? ऐसा प्रश्न करनेवाले शिष्य को आचार्यदेव पुन: आत्मा का स्वरूप समझाते हैं, 'यह आत्मा कौन है' - ऐसा प्रश्न करनेवाले शिष्य को आत्मा की दरकार हुई है, इसलिए उसकी रुचि और ज्ञान का प्रयत्न आत्मस्वभाव की ओर ढले बिना नहीं रहेगा।

यहाँ आचार्यदेव भगवान कहते हैं कि 'यदि प्रश्न किया जाये तो' हम

उसका उत्तर कहते हैं। जिसे समझाने के लिए आतुरता से प्रश्न उठा है, ऐसे शिष्य को हमारा उपदेश है, कपड़े की फेरी लगानेवाले की भांति या शाकभाजी बेचने वाले की भांति किसी के घर जाकर बलात् नहीं समझाते, जिसे तृषा नहीं लगी हो, उसे पानी नहीं पिलाते, जिसे क्षुधा नहीं लगी, उसे खिलाते नहीं हैं, उसीप्रकार जिन्हें आत्मा की दरकार नहीं हुई है, ऐसे जीवों को हम सुनाते नहीं हैं, किन्तु जिन्हें आत्मा की आतुरता है, उन्हीं को हमारा उपदेश है।

श्रीगुरु के निकट जाकर 'आत्मा कौन है' – ऐसा पूछने वाले जीव को प्रथम तो आत्मा के अस्तित्व की श्रद्धा है, सच्चे देव-गुरु कैसे होते हैं, उसकी श्रद्धा है और वैसे गुरु के पास जाकर आत्मा समझने के लिए पुकार की है, ऐसे सुपात्र शिष्य को आचार्यदेव इस परिशिष्ट द्वारा समझाते है, वह शिष्य आत्मस्वरूप को प्राप्त किये बिना नहीं रहेगा। शिष्य को मात्र एक आत्मा समझने की आतुरता है, इसलिए अन्य कोई उलटे-सीधे प्रश्न न पूछकर आत्मा का ही प्रश्न किया है कि प्रभो ! यह आत्मा कैसा है और उसकी प्राप्ति कैसे हो ? पुण्य-पाप की, स्वर्ग-नरक की या कर्म की बात नहीं पूछी, किन्तु आत्मा की ही बात पूछी है। अन्य सब जानकारी तो अनंतबार की है किन्तु अपना आत्मा कैसा है, वही पहले कभी नहीं जाना है, इसलिए शिष्य वही समझना चाहता है। पुण्य कैसे हो और स्वर्ग कैसे मिले – यह बात शिष्य नहीं पूछता, किन्तु आत्मा कैसा है और उसकी प्राप्ति कैसे हो ? ऐसा पूछता है, उस प्रश्न में ही उसकी आत्मा समझने की पात्रता आ जाती है।

पुनश्च, प्रश्न पूछने में भी 'यह आत्मा कैसा है' ऐसा कहकर अपने आत्मा को पृथक् करके पूछता है। 'यह आत्मा' ऐसा कहने में स्वयं अपने आत्मा की ओर उन्मुख होना चाहते हैं, दूसरे आत्माओं की ओर नहीं देखता। स्वयं अन्तर्मुख होकर अपने आत्मा को जानने से दूसरों के आत्मा कैसे हैं, वह भी ज्ञात हो जाता है, क्योंकि जैसा अपने आत्मा का स्वभाव है,

वैसा ही प्रत्येक आत्मा का स्वभाव है।

हे प्रभो ! यह मेरा आत्मा कैसा है ? वह मैं जानना चाहता हूँ ' – ऐसा प्रश्न करनेवाले शिष्य को आत्मा की इतनी आतुरता है कि वह मोक्ष की योग्यतावाला ही है, वह अल्पकाल में आत्मा को समझकर मोक्ष प्राप्त करनेवाला है, ऐसा प्रश्न जिसके अंतर में उठा, वह मोक्ष प्राप्त किये बिना रह ही नहीं सकता। पहले जो कुछ सुना और जाना है, वह सब जानकारी पर शून्य रखकर, पक्षपात छोड़कर श्रीगुरु के निकट जाकर विनयपूर्वक प्रश्न करता है कि हे भगवान ! यह मेरा आत्मा कैसा है और अपने को अपनी प्राप्ति कैसे हो ? ऐसा पूछनेवाले को पर की–पैसादि की या पुण्यप्राप्ति की भावना नहीं है किन्तु आत्मस्वभाव को जानकर उसी की प्राप्ति की भावना है, इसलिए जिज्ञासु होकर मात्र आत्मा का ही प्रश्न पूछा है।

यद्यपि 'आत्मा कौन है और यह कैसे प्राप्त हो' यह बात पहले कही जा चुकी है, परन्तु यहाँ शिष्य को जिज्ञासा को पूर्ण करने के लिए श्री आचार्यदेव इस परिशिष्ट में पुन: वह बात समझाते हैं।

अनादिकाल से संसार में परिभ्रमण करते हुए जीव ने बाह्य में पर का तो कुछ किया ही नहीं है, पर को लेना या छोड़ना, वह आत्मा के हाथ की बात है ही नहीं। अनादि से अज्ञानभाव से जीव ने विकारी भाव ही किये हैं और उन्हीं को अपना स्वरूप मानकर भटका है। उसके बदले अब आत्मा का हित करने का–आत्मा के आनंद की प्राप्ति करने का जिसे भाव हुआ है, ऐसा शिष्य आत्मा समझने के लिए प्रश्न करता है। अनादि से जो कुछ किया है, उसकी अपेक्षा कुछ नवीन करना है – ऐसे शिष्य को आंतरिक जिज्ञासा से प्रश्न उठा है कि प्रभो ! यह आत्मा कौन है और उसकी प्राप्ति कैसे हो ? ऐसे शिष्य को समझाने के लिए इस परिशिष्ट द्वारा पुन: यह बात कही जाती है।

जिसे आत्मा का स्वरूप जानकर उसे प्राप्त करने की पिपासा जागृत हुई है, 'मैं कौन हूँ' – ऐसा जिज्ञासा का प्रश्न उठा है, और 'आत्मा कैसे प्राप्त हो,

किसप्रकार उसका अनुभव हो' – ऐसा प्रश्न जिसे उठा है, ऐसे शिष्य को आचार्यदेव पुनः आत्मा का स्वरूप बतलाते हैं। पहले ज्ञान-अधिकार, ज्ञेय अधिकार और चरणानुयोग में जो वर्णन किया, उसमें आत्मा कौन है और उसकी प्राप्ति कैसे हो – यह दोनों बातें आ तो जाती हैं, किन्तु यहाँ पुनः दूसरे ढंग से आचार्यदेव वह बात समझाते हैं। *क्रमशः*

आत्मधर्म (हिन्दी), वर्ष 7, अंक 12

पृष्ठ 15 का शेष

हुआ था, परंतु अज्ञानदशा में अपने को रागादिभावरूप ही मानकर उसी की सेवा करता था, राग से भिन्न चैतन्यस्वरूप आत्मा की सेवा एक क्षण भी नहीं की थी; अब परभावों से भिन्न चैतन्यस्वरूप आत्मा की सेवा की... जिससे उसे साध्य आत्मा की सिद्धि हुई, मोक्षमार्ग प्रगट हुआ। वह जानता है कि अहा! अब हम चैतन्यस्वरूप ही हैं; उसे जानकर अब सततरूप से अनंत चैतन्य-चिह्नरूप ही हम अपना अनुभव कर रहे हैं। चैतन्यस्वरूप आत्मा की ऐसी अनुभूति से उच्च अन्य कोई नहीं है। ऐसी अनुभूति द्वारा हमें अपने साध्य आत्मा की सिद्धि हुई है। अन्य किसी उपाय द्वारा साध्य आत्मा की सिद्धि नहीं होती।

राग में जिसे एकत्वबुद्धि है, वह राग से पृथक् होकर चैतन्य में स्थिर होने की शक्ति कहाँ से लायेगा? अभी जो राग से भिन्न चैतन्य को नहीं जानता, वह उसे साधेगा कहाँ से? आत्मा तो ज्ञानस्वरूप है; आबाल-वृद्ध सभी जीव ज्ञानस्वरूप ही हैं, भगवान आत्मा तो स्वयं सदा ज्ञानरूप ही अनुभव में आता है; परंतु 'यह जो ज्ञान है, सो मैं हूँ'—ऐसा वे नहीं जानते और अपने को रागादि भावों के साथ एकमेक अनुभव करते हैं, इसलिये वे जीव राग से भिन्न ऐसे साध्य आत्मा को नहीं साध सकते। परभावों से भिन्न, चेतनास्वरूप आत्मा का अनुभव, वही आत्मा को साधने की रीति है।

आत्मधर्म (हिन्दी), वर्ष 27, अंक 11-12

आचार्यदेव परिचय शृंखला

भगवान आचार्यदेव
भगवान नेमिचन्द्र सिद्धान्तिदेव (मुनि)

सिद्धान्त, अध्यात्म व न्याय के त्रिवेणी संगम स्वरूप आचार्य नेमिचन्द्र सिद्धान्तदेव के कृपामृत द्वारा भव्यों के भाग्य से मात्र प्रथम 25 गाथारूप व बाद में 58 गाथारूप द्रव्यसंग्रह की रचना करके, आत्मार्थियों को कल्याण का मार्ग सुस्पष्ट कर दिया।

आप राजा भोज के समय में इस धरातल को पवित्र कर रहे थे; तब राजस्थान के कोटा-बूंदी के पास चम्बल नदी पर स्थित 'केशवराय पाटन', कि जो राजा भोज के परमार-राज्य के अन्तर्गत मालवा में 'तपोवन' सा है, जो उस समय मंडलेश्वर 'आश्रमनगर' के रूप में प्रसिद्ध था। आपका विहार करते हुए वहाँ पदार्पण हुआ। वहाँ राजश्रेष्ठी सोमनाथ श्रीपाल हेतु आपने भगवान मुनिसुव्रतनाथ तीर्थंकर के मंदिर में 'द्रव्यसंग्रह' की रचना की थी, क्योंकि बृहद्द्रव्यसंग्रह अनुसार मालवदेश में धारानगरी का स्वामी राजा भोजदेव था। उसके मंडलेश्वर श्रीपाल के आश्रम नामक नगर में, श्री मुनिसुव्रतनाथ तीर्थंकर के चैत्यालय में भाण्ड़ागार आदि अनेक नियोगों के अधिकारी सोमनाथ श्रेष्ठि के लिए, श्री नेमिचन्द्र सिद्धान्तिदेव ने प्रथम 25 गाथाओं के द्वारा लघुद्रव्यसंग्रह नामक ग्रंथ रचा। तत्पश्चात् विशेष तत्त्वों के ज्ञान के लिए 58 गाथाओं में बृहद्रव्यसंग्रह रचा।

आप आचार्य नयनन्दि के शिष्य व श्रीनन्दिजी के प्रशिष्य थे। आपके शिष्य का नाम आचार्य वसुनन्दिजी था।

आपने श्री सोमनाथ राजश्रेष्ठी पर कृपारूप से 'लघुद्रव्यसंग्रह' व 'बृहद्द्रव्यसंग्रह' ऐसे दो शास्त्रों की रचना की। यह हमारा भाग्य है, कि पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के प्रताप से उनके ग्रंथों के दर्शन ही नहीं, अपितु मुमुक्षुओं को उन शास्त्रों पर प्रवचन सुनने का भी लाभ मिला। इतना ही नहीं

उसमें भरा अध्यात्म का मर्मरूप सिद्धान्त—'निश्चय व व्यवहाररूप मोक्षमार्ग दोनों एक ही साथ साधक को निर्विकल्प ध्यान में प्रकट होते हैं'—भी भव्यजीवों को प्राप्त हुआ। आपका यह अपूर्व सिद्धान्त महा उपकारी श्री कहानगुरु के कृपामृत से हमें यत्किंचित् समझने मिला। यह सब आपका ही श्री सोमनाथ राजश्रेष्ठि पर बरसे कृपामृत के अंश का प्रताप है। आपका काल विद्वान वर्ग ई.स. 1068 निर्णित करते हैं।

मुनिवर श्री नेमिचन्द्रसिद्धान्तिदेव भगवंत को कोटि कोटि वंदन।

भगवान आचार्यदेव
श्री वसुनन्दि

वसुनन्दि नामक कई आचार्य हुए हैं। आपने 'प्रतिष्ठासार संग्रह' ग्रंथ संस्कृत में व श्रावकाचार या 'उपासकाध्ययन' प्राकृत भाषा में लिखा है। इससे ज्ञात होता है, कि आप उभय भाषा के ज्ञाता थे।

आपके उत्तरवर्ती आचार्यों ने आपको सैद्धान्तिक उपाधि से अलंकृत किया होने से, आप सिद्धान्तों के भी मर्मी होने चाहिए।

श्री कुन्दकुन्दाचार्य की आम्नाय में स्वसमय और परसमय के ज्ञायक भव्यजीरूपी कुमुदवन को विकसाने वाले चन्द्रतुल्य श्री नन्दि आचार्य हुए। श्रीनन्दि आचार्य के शिष्य श्री नयनन्दि मुनि हुए व नयनन्दि के शिष्य नेमिचन्द्र हुए। उन नेमिचन्द्र के प्रसाद से श्री वसुनन्दि आचार्य ने उपासकाध्ययन लिखा है।

आप धारा नगरी के राजा भोज के समय के हों ऐसा प्रतीत होता है।

आपकी रचनाएँ (1) प्रतिष्ठासारसंग्रह, (2) उपासकाध्ययन या श्रावकाचार, (3) मूलाचार की आचारवृत्ति।

आपका सयम ई. स. 1068 से 1118 माना जाता है।

'प्रतिष्ठासारसंग्रह' ग्रंथ के रचयिता आचार्य श्री वसुनन्दिदेव को कोटि कोटि वंदन।

प्रेरक-प्रसंग

महानता

गर्मी के दिन थे। सम्राट विक्रमादित्य और महाकवि कालिदास संध्या के समय उपवन में बैठे थे। दोनों आपस में वार्तालाप कर रहे थे। सम्राट महाकवि की विद्वत्ता से बड़े प्रभावित हुए। सम्राट ने महाकवि से कहा कि आपकी विद्वत्ता अद्वितीय है। आपकी बराबर करनेवाला इस संसार में कोई नहीं है। इसमें दो मत नहीं, किन्तु....। बोलते-बोलते सम्राट चुप हो गये। महाकवि कालिदास भी चकित थे कि महाराज क्यों चुप हो गये हैं। ऐसा कुछ देर चला। तभी सम्राट बोलने लगे—महाकवि! काश आप भी रूपवान होते तो...।

महाकवि कालिदास भाँप गये, सम्राट विक्रमादित्य के अभिमान को; पर उन्होंने कोई उत्तर नहीं दिया।

गर्मी भयंकर थी। कुछ समय के पश्चात् सम्राट विक्रमादित्य को प्यास लगी। महाकवि ने उन्हें सोने के घड़े में से जल पिलाया। सम्राट को स्वर्ण घट का जल गर्म लगा। वह बोले—'महाकवि! यह तो गर्म जल था, ठण्डा पानी लाओ। क्या ठण्डा जल नहीं है?'

'महाराज! ठण्डा जल तो है, पर स्वर्ण घट की बजाय मिट्टी के पात्र में है। यदि आज्ञा हो तो लाऊँ? महाकवि बोले। महाकवि ने यह बात व्यंग्य में कही थी।

सम्राट बोले—'मुझे ठण्डा जल पिलाओ। इससे क्या कि वह मिट्टी के पात्र में है?' महाकवि ने मिट्टी के पात्र का जल लाकर सम्राट को दिया। पीने के पश्चात् सम्राट ने कहा—'सचमुच मिट्टी के पात्र का पानी पीकर मन तृप्त हुआ।' सम्राट विक्रमादित्य की प्यास बुझ गयी।

तभी महाकवि ने विनम्रता से कहा—'महाराज स्वर्ण घट और मिट्टी के बर्तन में एक-सा जल भरा है, परन्तु स्वर्ण घट का पानी गर्म है और मिट्टी के पात्र का पानी ठण्डा है। इसी प्रकार पानी की भाँति महानता का रूप-कुरूप के साथ कोई सम्बन्ध नहीं।'

शिक्षा - महानता गुणों से आती है, शरीर के रंग-रूप से नहीं।

साभार : बोध कथायें

जिस प्रकार–उसी प्रकार में छिपा रहस्य

जैसे– पीपर के काले दाने में चौसठ पहरी चरपराहट हरे रंग की अन्दर भी है । रगड़ने से प्रगट होती है। वह पत्थर में से नहीं आती है।

ऐसे– इस आत्मा स्वभाव में परमात्मा स्वरूप पूर्ण पड़ा है । अर्थात् पूर्ण ज्ञान और आनन्द आदि आत्मा में पड़े है। उसी में से आते है। शरीर की क्रिया में से नहीं आते है।

जैसे– हे भव्य तुम अपनी आत्मा को सुखी देखना चाहते है।

उसी प्रकार– सभी आत्माओं सुखी देखो। उनके प्रति अनादर या कलुषितता मत लाओं ।

जैसे– बहुत से जीव नवतत्वों का नाम नहीं जानते परन्तु उनको भी नवतत्वों की विपरीत श्रद्धा होती है और मिथ्याचारित्र होता है। भील को रूपये की संख्या गिनना नहीं आती तो भी उनमें ममता करता है।

वैसे ही– एकेन्द्रिय आदि को शरीर आदि के नाम का पता नहीं होता फिर भी उनमें ममता करता है, भुख, प्यास, सर्दी, गर्मी से दुखी रहते है। अतः स्थावर जीव भी मिथ्यादर्शन, ज्ञान, चारित्र से ग्रसित रहते हैं।

जैसे– कोई व्यक्ति अपने व्यापार संबंधी सहीं जानकारी रखता है उसी रूप व्यापार करता है, तो सफल एवं चतुर व्यापारी कहलाता है। भले ही उसे अप्रयोजन भूत अन्य व्यापारों की कोई समझ न हो।

उसी प्रकार– मोक्षार्थी का मूल प्रयोजन आत्मा के रत्नत्रय की सही जानकारी है तो वह ज्ञानी कहलाता है और मोक्ष प्राप्त करता है, भले ही उसे अन्य करोड़ों प्रकार की जानकारी न हो।

जैसे– कोई गुलाम देश, आजाद होने पर अपार खुशियाँ मनाता है, कोई कैदी जेल से रिहा होने पर अपने परिवार के बीच आकर एक अनुपम शांति का अनुपम शांति का अनुभव करता है।

उसी प्रकार– आत्मा कर्मों से मुक्त होकर अपने अनन्त गुणों में रहकर अनन्त आनन्दित होता है।

जैसे– हीरे की दुकान में लाखों के नुकसान को तो नहीं गिने और साग–भाजी की संभाल करने में रूके तो उसे लोग मूर्ख कहते है। साग खरीदना भले ही नहीं आता हो परन्तु यदि आवश्यक वस्तुओं का ज्ञान हो तो लोग उसे चतुर कहते है।

वैसी ही– यहां मूल तत्वों के स्वरूप में विपरीतता होवे तो वह जीव मिथ्या दृष्टि है। ज्ञान के कम–अधिक उघाड़ से मोक्षमार्ग का सम्बन्ध नहीं है। ज्ञान कहां लगा है यह मुख्य बात है।

क्रमशः

संकलन – प्रो० पुरुषोत्तमकुमार जैन, रुड़की

समाचार-दर्शन

तीर्थधाम मङ्गलायतन में
पूज्य गुरुदेवश्री के उपकार दिवस पर गोष्ठी सम्पन्न

तीर्थधाम मङ्गलायतन : यहाँ संचालित भगवान श्री आदिनाथ विद्यानिकेतन के छात्रों द्वारा पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के उपकार दिवस पर ऑनलाईन गोष्ठी का आयोजन किया गया। जिसमें पण्डित अशोक लुहाड़िया ने अध्यक्षता की। मुख्य अतिथि के रूप में पण्डित सुधीर शास्त्री, डॉ. सचिन्द्र शास्त्री आदि ने अपने वक्तव्य प्रस्तुत किये। मंगलार्थी पीयूष करेली, संचार करेली, वरांग जैन इंदौर, कृतिकराज जबलपुर ने पूज्य गुरुदेवश्री के उपकारों का वर्णन अपने वक्तव्य में किया। इसका संचालन मंगलार्थी दर्शिल सेठी तथा मंगलाचरण मंगलार्थी अर्चित ने किया।

षट्खण्डागम ग्रन्थ की प्रथम पुस्तक की वाचना सम्पन्न

तीर्थधाम मङ्गलायतन में प्रथम बार, प्रथम श्रुत स्कन्ध **'षट्खण्डागम धवला टीका सहित'** वाचना का कार्यक्रम, मार्गशीर्ष पंचमी, शनिवार 5 दिसम्बर 2020 से अनवरत प्रारम्भ था। जिसकी प्रथम पुस्तक की वाचना का समापन 31 मार्च 2021 को भक्तिभावपूर्वक सम्पन्न हुई। इस उपलक्ष्य में प्रभातफेरी एवं षट्खण्डागम ग्रन्थजी को विराजमान किया गया।

द्वितीय पुस्तक की वाचना 01 अप्रेल 2021 से प्रारम्भ

विद्वत् समागम - विदुषी बालब्रह्मचारिणी कल्पनाबेन, जयपुर एवं स्थानीय विद्वान पण्डित अशोक लुहाड़िया, पण्डित सुधीर शास्त्री, पण्डित सचिन जैन, पण्डित सचिन्द्र शास्त्री का लाभ प्राप्त होता है।

दोपहर - 01.30 से 03.15 तक (प्रतिदिन)

सायंकाल 07.30 से 09.00 बजे तक मूलाचार ग्रन्थ का स्वाध्याय

नोट—इस कार्यक्रम में आप ZOOM ID-9121984198,

Password - 1008 के माध्यम से भी शामिल हो सकते हैं।

वैराग्य समाचार

राजकोट – पण्डित चेतनभाई का शान्तपरिणाम से देहपरिवर्तन हो गया है। आप पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के अनन्य भक्त, आपने पूज्य गुरुदेवश्री के अनेक ग्रन्थों के शब्दशः प्रवचनों का प्रकाशन कर गुरुवाणी की प्रभावना में क्रान्तिकारी योगदान किया।

आगरा – श्री पद्मचन्दजी सर्राफ का शान्तपरिणाम से देहपरिवर्तन हो गया है। आप गुरुदेवश्री से प्राप्त तत्त्वज्ञान से ओतप्रोत थे।

इन्दौर – पण्डित ऋषभ जैन इंजीनियर का शान्तपरिणाम से देहपरिवर्तन हो गया है। आप गुरुदेवश्री से प्राप्त तत्त्वज्ञान को सरल भाषा में सबके समक्ष परोसनेवाले सफल विद्वान थे।

दिल्ली – श्री वी. के. (सी.ए.) का कोरोना से देहपरिवर्तन हो गया है।

गुना – श्री सुभाषचन्द्रजी का कोरोना से देहपरिवर्तन हो गया है। गुना पंचकल्याणक के भगवान के पिताश्री।

विदिशा – श्री शीलचन्दजी का शान्तपरिणाम से देहपरिवर्तन हो गया है। आप पण्डित शिखरचन्दजी के भाई थे।

सागर – पण्डित अजित शास्त्री का शान्तपरिणाम से देहपरिवर्तन हो गया है। आप वर्षों से तत्त्वज्ञान के प्रचार-प्रसार में संलग्न थे।

उभेगाँव – पण्डित अक्षय जैन शास्त्री का कोरोना से देहपरिवर्तन हो गया है। आप युवा शास्त्री विद्वान थे।

दिल्ली – श्री निर्मलकुमारजी सेठी का शान्तपरिणाम से देहपरिवर्तन हो गया है। अध्यक्ष भारतवर्षीय दिगम्बर जैन महासभा।

ग्वालियर – पण्डित नेमीचन्दजी ग्वालियर का शान्तपरिणाम से देहपरिवर्तन हो गया है।

अलीगढ़ – श्रीमती विनोदबाला जैन धर्मपत्नी सन्तोषकुमार जैन का कोरोना से देहपरिवर्तन हो गया है। आप श्री स्वप्निल जैन की मामी थीं।

मुम्बई – श्री विरलभाई का कोरोना से देहपरिवर्तन हो गया। आप मुमुक्षु समाज के श्रेष्ठी श्री अक्षयभाई दोशी के साले थे।

दिल्ली – श्री रामशरणजी जैन का शान्तपरिणाम से देहपरिवर्तन हो गया है। दिल्ली सरकार के स्वास्थ्य मन्त्री श्री सतेन्द्र जैन के पिताश्री थे।

भोपाल – श्री राजेश जैन गोयल का कोरोना से देहपरिवर्तन हो गया है। आप मंगलार्थी शुभम-सत्यम के पिताजी थे।

दिल्ली – श्री अतुल जैन भिण्डवाले का शान्तपरिणाम से देहपरिवर्तन हो गया है। आप नीरज शास्त्री के छोटे भाई तथा मंगलार्थी चेतन के चाचाजी थे।

सोनगढ़ – उम्मेदभाई नागरदासभाई मोदी का शान्तपरिणाम से देहपरिवर्तन हो गया है।

जयपुर – पण्डित पीयूष शास्त्री जयपुर का कोरोनो से देहपरिवर्तन हो गया है। आप बहुत ही शान्त सरल स्वभावी और जैनपथ प्रदर्शक के सहायक सम्पादक थे।

गुना – पण्डित बाबूलालजी बांझल का शान्तपरिणाम से देहपरिवर्तन हो गया है। आप तत्त्वज्ञान के प्रचार-प्रसार में सक्रिय कार्यकर्ता थे। आप समकित शास्त्री के दादाश्री थे।

पिड़ावा – श्रीमती प्रज्ञा जैन का कोरोना से शान्तपरिणाम से देहपरिवर्तन हो गया है। आप विवेक शास्त्री पिड़ावा की धर्मपत्नी थी। आप अत्यन्त धार्मिक भद्र परिणामी महिला थीं।

कोलकाता – श्री सुरेशजी पाटनी का शान्तपरिणाम से देहपरिवर्तन हो गया है। आप मंगलार्थी चिराग के पिताश्री थे। आप मुमुक्षु समाज के आधार स्तम्भ थे।

खडेरी – श्री किशोरीलालजी पटेल का कोरोना से शान्तपरिणाम से देहपरिवर्तन हो गया है। आपके आजीवन गृहीत मिथ्यात्व का त्याग था।

खनियाधाना – पण्डित ताराचन्दजी जैन पटवारी। आप चर्चित-हर्षित शास्त्री, मंगलार्थी अर्चित के दादाश्री थे।

बड़ौत (मेरठ) – पण्डित राजकिशोर जैन का शान्तपरिणाम से देहपरिवर्तन हो गया है।

नागपुर – श्रीमती शान्तिदेवी का कोरोना से शान्तपरिणाम से देहपरिवर्तन हो गया है। आप डॉ. राकेश शास्त्री की माताजी एवं मंगलार्थी संयम जैन की दादीश्री थीं।

भीलवाड़ा – श्री माणिक्य जैन का कोरोना से देहपरिवर्तन हो गया है। आप पण्डित जे.पी.दोशी के साले थे।

दिवंगत आत्माएँ शीघ्र ही मोक्षमार्ग प्रशस्त कर अभ्युदय को प्राप्त हो—ऐसी भावना मङ्गलायतन परिवार व्यक्त करता है।

वैराग्य वर्षा

यह अमूल्य चिन्तामणि जैसी मनुष्यदेह प्राप्त करके, आत्मार्थ साधने के बदले कितने ही मूर्ख जीव, विषय-कषाय में जीवन गँवा देते हैं तथा कितने ही जीव आत्मा को समझे बिना क्रियाकाण्ड में रूककर अज्ञान ही अज्ञान में मनुष्यभव हार जाते हैं। यदि आत्मा का भान नहीं करे तो बन्दर के जीवन में और मनुष्य के जीवन में यहाँ कोई अन्तर नहीं माना गया है; इसलिए जैसे बने वैसे शीघ्र सत्समागम से आत्मा की पहचान करना और इस मनुष्यभव में सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप धर्म का सेवन करना आवश्यक है। यही आत्महित का उपाय है।

देखो! देवों ने द्वारिकानगरी की रचना श्रीकृष्ण के लिए की थी। अहा! जिस नगरी में सोने के गढ़ और रत्न के कंगूरे थे - ऐसी वह मनोहर नगरी जब जलने लगी, तब लाखों-करोड़ों प्रजा उसमें भस्म हो गयी, परन्तु कोई उन्हें बचाने के लिए नहीं आया। उस समय श्रीकृष्ण और बलदेव अपने माता-पिता को रथ में बिठाकर बाहर निकालने लगे, तब आकाशवाणी हुई कि माता-पिता को छोड़ दो, तुम दोनों के अतिरिक्त कोई नहीं बचेगा, माता-पिता भी नहीं बचेंगे। अहा! जिनकी हजारों देव सेवा करते हों, वे श्रीकृष्ण और बलदेव भी माता-पिता को भस्म ही होते देखते रहे, परन्तु उन्हें बचा नहीं सके, मात्र विलाप ही करते रह गये।

अरे भाई! नाशवान् वस्तु को उसके नाश के काल में कौन बचा सकता है? जिस समय देह को छूटने का काल होता है, उस समय उसे कौन बचा सकता है? बापू! जगत् में कोई शरण नहीं। देखो न! अन्दर रानियाँ चित्कार करके पुकारती हैं - 'हे श्रीकृष्ण! हमें निकालो... हमें निकालो!' परन्तु कौन निकाले? बापू! त्रिखण्ड के स्वामी श्रीकृष्ण भी यह सब देखते रह गये।

Regn. No. : DELBIL / 2001/4685 Postal regn. No. : A.L.G. / 29 / 2018-20

मुनिराज की परिणति में वैराग्य का ज्वार

जैसे पूर्णमासी के दिन पूर्णचन्द्र के योग से समुद्र में ज्वार आता है; उसी प्रकार **मुनिराज को पूर्ण चैतन्यचन्द्र के एकाग्र अवलोकन से आत्मसमुद्र में ज्वार आता है; वैराग्य का ज्वार आता है, आनन्द का ज्वार आता है, सर्व गुण-पर्याय का यथासम्भव ज्वार आता है।** यह ज्वार बाहर से नहीं, भीतर से आता है। पूर्ण चैतन्यचन्द्र को स्थिरतापूर्वक निहारने पर अन्दर से चेतना उछलती है, चारित्र उछलता है, सुख उछलता है, वीर्य उछलता है; सब कुछ उछलता है। **धन्य है वह मुनिदशा।**

(जिणसासणं सव्वं, ४०३, पृष्ठ ११३)

पं. सं. : DELBIL/2001/4685
स्वामी, प्रकाशक एवं मुद्रक पवन जैन द्वारा **मङ्गलायतन** मुद्रणालय, आगरा रोड, अलीगढ़-202001 छपवाकर, 'विमलांचल', हरिनगर, अलीगढ़-202001 से प्रकाशित। सम्पादक : डॉ. सचिन्द्र शास्त्री, मङ्गलायतन।

मङ्गलायतन
श्री आदिनाथ-कुन्दकुन्द-कहान दिगम्बर जैन ट्रस्ट, हरिनगर, आगरारोड, अलीगढ़-202001 (उ.प्र.)
Shri Adinath-Kundkund-Kahan Digamber Jain Trust
Harinagar, Agra Road, Aligarh-202001 (U.P.)
Ph. : 9997996346, 2410010/10; Fax : 2410019/22
info@mangalayatan.com www.mangalayatan.com